■ आधुनिक स्थापत्य

ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत में आधुनिक स्थापत्य का विकास देखा गया। वस्तुतः ब्रिटिश के समक्ष एक बड़ी चुनौती के रूप में मुगल स्थापत्य मौजूद था और उन्होंने मुगल स्थापत्य की नकल करने की कोशिश की। किंतु मुगल स्थापत्य की तुलना में ब्रिटिश स्थापत्य काफी घटिया सिद्ध हुए। वस्तुतः 19वीं सदी में विक्टोरियन शैली में कुछ स्थापत्यों का निर्माण किया गया। ये स्थापत्य ईंट, इस्पात तथा सीमेंट के माध्यम से निर्मित किए गए थे तथा फिर मुगल स्थापत्य की तर्ज पर इस पर ईंटों का गुम्बद निर्मित किया गया, किंतु ये गुम्बद अप्रभावी दिखते हैं।

जब 1911 में दिल्ली नई राजधानी बनी, तो फिर प्रमुख स्थापत्यविद् लुटियन्स तथा उनके सहयोगी बेकर ने दिल्ली में नये स्थापत्यों के निर्माण का खाका तैयार किया। आरम्भ में उन्होंने नव रोमन शैली में स्थापत्य निर्मित करने का प्रयास किया। फिर उन्होंने अपना यह विचार त्याग दिया तथा बदले में स्थापत्य निर्माण में हिन्दू, बौद्ध तथा इस्लामी शैली को अपनाने का प्रयास किया। इन्हीं स्थापत्यकारों के द्वारा केंद्रीय सचिवालय, वायसरॉय के महल तथा कुछ अन्य भवनों का निर्माण किया गया। किंतु ये स्थापत्य भी मुगल स्थापत्य की तुलना में हीन सिद्ध हुए क्योंकि न तो ये आधुनिकता को अपना सके और न ही मध्ययुगीन शैली को पुनः जीवित कर सके। वस्तुतः आधुनिक स्थापत्य का एक प्रमुख अभिलक्षण होता है- इसका खुलापन एवं इसकी उपयोगिता। किंतु ये स्थापत्य चारों तरफ से बंद-बंद दिखते हैं, फिर इनके ऊपर बौद्ध अथवा इस्लामी गुम्बद का निर्माण किया गया, किंतु वह अपना प्रभाव नहीं छोड़ता।

■ ल्यूरीबेकर को गरीबों का स्थापत्यविद् क्यों माना जाता है?

ल्यूरीबेकर 20वीं सदी का वह स्थापत्यकार था, जिसने अपने स्थापत्य में सौंदर्य की जगह उपयोगिता पर विशेष बल दिया। उसने कुलीन वर्ग के मनोविलास के लिए नहीं, अपितु निर्धन वर्ग के निवास के लिए भवनों का निर्माण किया था। उसने केरल क्षेत्र में भवन निर्माण में एक प्रकार की क्रांति ला दी।

उसने भवन निर्माण में फिल्टर स्लैब विधि का प्रयोग किया। वस्तुतः भवनों का निर्माण क्षेत्रीय सामग्रियों से किया जाना था क्योंकि उन सामग्रियों को कहीं दूर से लाना नहीं पड़ता, अपितु सस्ती दर पर संबंधित क्षेत्र में ही उपलब्ध होतीं। फिर बेकर ने इस बात का भी ध्यान रखा कि मकानों का निर्माण संबंधित क्षेत्र के भू-दृश्य तथा वातावरण के अनुकूल हो। इन्हीं कारणों से आज भी ल्यूरीबेकर को 'गरीबों के स्थापत्यकार' के रूप में याद किया जाता है।

आधुनिक चित्रकला

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के पश्चात् कुछ ऐसे भी भारतीय थे जो यूरोपीय चित्रकला से भी परिचित हुए। एक भारतीय चित्रकार थे त्रावणकोर के **रवि वर्मा**। उन्होंने भारतीय चित्रकला को यूरोपीय चित्रकला से जोड़ने का प्रयास किया। उस काल में फ्रांस की राजधानी पेरिस यूरोपीय चित्रकारों का मक्का हुआ करती थी तथा यूरोपीय चित्रकला पर पेरिस का प्रभाव देखा जाता था। रवि वर्मा की चित्रकारी पर भी नव क्लासिकल फ्रांसीसी चित्रकला का प्रभाव था।

राजा रवि वर्मा के चित्र

फिर राष्ट्रीय आंदोलन के मध्य ब्रिटिश के विरुद्ध प्रतिक्रिया के क्रम में भारतीय कला की ओर आकर्षण बढ़ा। अत: स्वदेशी आंदोलन के मध्य **अवनींद्र नाथ टैगोर** ने मुगल चित्रकला को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। वह चित्रकला के बंगाल स्कूल के संस्थापक थे। फिर इस स्कूल से जुड़ने वाले महत्वपूर्ण चित्रकार थे- **नागेंद्र नाथ टैगोर, रवीन्द्र नाथ टैगोर, नंदलाल बोस, यामिनी राय** आदि। यामिनी राय का दृष्टिकोण थोड़ा अलग था। जहाँ अन्य चित्रकारों ने जीवन पर विशेष बल दिया था, वहीं यामिनी राय ने जन-सामान्य के जीवन के चित्रण में विशेष रुचि ली।

अबनीन्द्र नाथ ठैगोर के चित्र

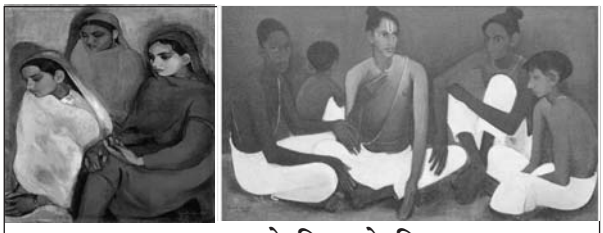

अमृता शेरगिल के चित्र

आधुनिक चित्रकारों में ही एक महत्वपूर्ण नाम आता है **अमृता शेरगिल** का। इनकी माता हंगरी की थी तथा पिता सिख थे। इन्होंने बंगाली स्कूल से अलग हटकर अपना मार्ग बनाया। इनके चित्रों में हंगरी की परी कथा का भी प्रभाव है।

■ आधुनिक भारत की कुछ स्थानीय शैलियाँ

- **नाथद्वारा शैली:** 1671 में ब्रज से श्रीनाथ जी की मूर्ति को नाथद्वारा लाये जाने के पश्चात् ब्रजवासी चित्रकारों द्वारा मेवाड़ में ही चित्रकला की स्वतंत्र नाथद्वारा शैली का विकास किया गया।
- **सिख शैली:** इस शैली का विकास लाहौर स्टेट के राजा महाराजा रंजीत सिंह के शासन काल में हुआ। इस शैली के विषयों का चयन पौराणिक महाकाव्यों से किया गया है। जबकि इसका स्वरूप पूर्णत: भारतीय है। इस शैली में भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं से संबंधित रागमाला के चित्रों की प्रधानता है। कालान्तर में इस शैली पर मुगल शैली के हावी हो जाने से इसका प्रभाव क्षीण होता गया।
- **पटना या कम्पनी शैली:** जनसामान्य के आम पहलुओं के चित्रण के लिए प्रसिद्ध पटना या कम्पनी चित्रकला शैली का विकास मुगल साम्राज्य के पतन के बाद हुआ। इन चित्रकारों ने पटना एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्र को अपना कार्य क्षेत्र बनाया। इन चित्रकारों द्वारा बनाए गए चित्र ब्रिटेन भी भेजे गए। पटना कलम के चित्र लघुचित्रों की श्रेणी में आते हैं जिन्हें अधिकतर कागज और कहीं-कहीं हाथी दाँत पर बनाया गया है। सामान्यत: इन चित्रों में दैनिक जीवन के दृश्यों और जन-साधारण के जीवन का चित्रण हुआ है; यथा- लकड़ी काटता हुआ बढ़ई, मछली बेचती हुई औरत, लोहार, सुनार, एक्कावाला, पालकी उठाए हुए कहार, खेत जोतता हुआ किसान, साधु संन्यासी आदि के चित्र। इनके अलावा, इस शैली के चित्रों में पशु-पक्षियों को भी दिखाया गया है।
- **कालीघाट के पट्टचित्र:** कलकत्ता के मशहूर काली मंदिर के पास कागज, टाट या कपड़े पर बने चित्र, जो स्थानीय बाजार की माँग पर आधारित थे, उन्हें कालीघाट के चित्र कहा गया। इनमें धार्मिक कथाओं, देवी-देवताओं या सामाजिक विषयों को ध्यान में रखकर चित्र बनाए गए। इस शैली से प्रेरणा पाकर मिदनापुर, हुगली, चंद्रनगर, बर्दमान और मुर्शिदाबाद में चित्र बनाए गए।

- **कलमकारी चित्रकला:** दक्षिण भारत के आंध्र प्रदेश में प्रचलित हस्त निर्मित यह चित्रकला सूती कपड़े पर रंगीन ब्लॉक से छापकर बनाई जाती है। इसमें सब्जियों के रंगों से धार्मिक चित्र बनाए जाते हैं।
- 15वीं शताब्दी में विजयनगर के शासकों के संरक्षण में इस कला का विकास हुआ।
- इनको बनाने वालों में अधिकतर महिलाएँ हैं। यह कला मुख्यतया भारत और ईरान में प्रचलित है।
- भारत में कलमकारी के मुख्यत: दो रूप विकसित हुए हैं- प्रथम, मसूलीपट्टनम कलमकारी एवं द्वितीय श्रीकलाहस्ति कलमकारी (आंध्र प्रदेश)।
- इसमें सर्वप्रथम वस्त्र को रातभर गाय के गोबर के घोल में डुबोकर रखा जाता है। अगले दिन इसे धूप में सुखाकर दूध और माँड़ के घोल में डुबोया जाता है। बाद में अच्छी तरह से सुखाकर इसे नरम करने के लिये लकड़ी के दस्ते से कूटा जाता है। इस पर चित्रकारी करने के लिये विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक पौधों, पत्तियों, पेड़ों की छाल, तनों आदि का प्रयोग किया जाता है।

- **वर्ली चित्रकला:** यह भित्ति चित्रकला महाराष्ट्र-गुजरात सीमांत क्षेत्रों के आदिवासियों में लोकप्रिय है। यह चित्रकला भीमबेटका की शैली जैसी है। इसमें सूर्य-चंद्रमा, पहाड़ों, नुकीले पेड़ों, वृत्त, त्रिकोण और सबसे महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक दृश्यों का अंकन किया जाता है। चित्रों में आम जनजीवन की झाँकी; जैसे- शिकार करना, मछली पकड़ना, खेती, त्यौहार एवं नृत्य को भी दर्शाया जाता है। इनमें गेरू रंग की पृष्ठभूमि में चावल से बने सफेद रंग की सहायता से चित्र बनाए जाते हैं। इस चित्रकला से जुड़े प्रसिद्ध चित्रकार जिव्या सोमा माशे और उनके पुत्र बालू माशे हैं।

ये साधारण तथा स्थानीय वस्तुओं का प्रयोग करके बनाए जाते हैं, जैसे- चावल की लेही, स्थानीय सब्जियों के गोंद और इनका उपयोग एक अलग रंग की पृष्ठभूमि पर वर्गाकार, त्रिभुजाकार, वृत्ताकार इत्यादि रेखागणितीय आकृतियों के माध्यम से किया जाता है।

- **कोहबर-सोहराई कला शैली:** यह झारखंड के जनजातीय इलाके की कला शैली है। इसे वंश वृद्धि और फसल वृद्धि के रूप में चित्रित किया जाता है। इसे घर की पूरी दीवारों पर उकेरा जाता है। इसके विषयों में राजा-रानी और प्रकृति का चित्रण होता है। एक ही चित्र में मछली, हाथी, तोता, सूर्य, चंद्रमा आदि को उकेरा जाता है।
- **फाड़ चित्र**- फाड़ चित्र एक प्रकार के लंबे मफलर के समान वस्त्रों पर बनाए जाते हैं। इस प्रकार के चित्र राजस्थान में बहुत अधिक प्रचलित हैं और प्राय: भीलवाड़ा जिले में प्राप्त होते हैं। फाड़ चित्र किसी नायक के वीरतापूर्ण कार्यों की कथा या किसी चित्रकार या किसान के जीवन, पशु-पक्षी व फूल-पौधों के वर्णन प्रस्तुत करते हैं। ये चित्र चटख व सूक्ष्म रंगों से बनाए जाते हैं। चित्रों की रूपरेखा पहले काले रंग से बनाई जाती है, फिर बाद में उसमें रंग भर दिये जाते हैं।

KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

ब्रिटिश शासन के अंतर्गत शिक्षा

व्यक्ति एवं समुदाय दोनों की प्रगति के लिए शिक्षा एक अनिवार्य तत्व है। भारत की सभ्यता विश्व की प्राचीनतम् सभ्यताओं में से एक रही है तथा यहाँ शिक्षा का अति प्राचीन एवं समृद्ध इतिहास रहा है।

प्राचीन काल में ब्राह्मण शिक्षा के साथ-साथ बौद्ध एवं जैन शिक्षा की भी परंपरा रही थी। बौद्धों के अधीन कई विश्वविद्यालय सक्रिय रहे थे। पाँचवीं सदी में नालंदा विश्वविद्यालय स्थापित हुआ तथा देखते-देखते वह शिक्षा का महान केंद्र बन गया, जबकि यूरोप में 12वीं सदी में ही जाकर बोलोनिया (Bologna) में प्रथम विश्वविद्यालय स्थापित हो सका था। भारत में मध्यकाल में भी शासकों तथा क्षेत्रीय जमींदारों के द्वारा शिक्षा को संरक्षण दिया जा रहा था। पूर्व-ब्रिटिश शासन काल में हिंदी एवं इस्लामी दोनों प्रकार की शिक्षा प्रचलित थी। उच्च शिक्षा में धर्म, दर्शन, गणित आदि की शिक्षा दी जाती थी, वहीं निम्न स्तर की शिक्षा में व्यावहारिक विषयों की, जिनमें शिल्प एवं तकनीकी शामिल होते, जानकारी दी जाती थी। सबसे बढ़कर, यह शिक्षा व्यवस्था लचीली एवं स्थानीय जरूरतों के अनुकूल होती।

आगे भारत में आधुनिकता का प्रवर्तन ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ हुआ। दूसरे शब्दों में, औपनिवेशीकरण एवं आधुनिकीकरण दोनों जुड़वाँ संतान के रूप में प्रकट हुए। जैसा कि हम जानते हैं कि उपनिवेशवाद का बल देशी अर्थव्यवस्था का दोहन करने तथा उसे मातृदेश के लाभ के अनुकूल बनाने पर होता है। अत: उसकी नीतियाँ भी इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर आकार ग्रहण करती हैं।

इस प्रकार ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत के संदर्भ में जो शिक्षा नीति अपनाई गई, वह औपनिवेशिक हित से परिचालित रही थी। कंपनी शासन की स्थापना के शीघ्र बाद भारत में सक्रिय ब्रिटिश प्रशासकों ने, जिन्हें प्राच्यवादी के रूप में जाना जाता, कुछ शिक्षण संस्थानों की स्थापना की दिशा में पहल की; यथा- 1781 में वॉरेन हेस्टिंग्स की पहल पर कलकत्ता मदरसा तथा 1791 में जोनाथन डंकन की पहल पर बनारस में एक संस्कृत कॉलेज की स्थापना। इन संस्थानों का बल भारतीय ज्ञान (Indian Knowledge System) के प्रसार पर रहा था। ऐसा सोचा गया कि भारतीय परंपरा एवं अतीत के ज्ञान में पारंगत ब्रिटिश अधिकारी संभवत: ज्यादा बेहतर रूप में ब्रिटिश हित में काम कर सकते थे।

परंतु इस सोच में एक नाटकीय परिवर्तन तब आया, जब ब्रिटेन में औद्योगिक पूँजीवाद के उद्भव के साथ बुद्धिजीवियों के एक नए वर्ग का उद्भव हुआ। इसे उदारवादी तथा उपयोगितावादी समूह के रूप में जाना गया। इस नये समूह के विचारों ने 19वीं सदी में भारत की शिक्षा नीति पर गहरा प्रभाव छोड़ा। बंगाल लोक शिक्षा समिति (Bengal Public Education Committee) में ऐसे सदस्यों का जोर बढ़ने लगा, जिन्हें पाश्चात्यवादी (Anglicist) के रूप में जाना जाता था। इसके कारण भारत की भावी शिक्षा नीति के मुद्दे पर प्राच्य-पाश्चात्य (Orientalist-Anglicist) विवाद आरंभ हुआ। विवाद का मुख्य मुद्दा यह था कि शिक्षा का माध्यम क्या हो- भारतीय भाषा अथवा अंग्रेजी भाषा? बंगाल लोक शिक्षा समिति के अध्यक्ष के रूप में लॉर्ड मैकाले की नियुक्ति ने पाश्चात्यवादियों के पक्ष को काफी मजबूत कर दिया। इसका परिणाम था मैकाले शिक्षा पद्धति की घोषणा, जो फरवरी, 1835 में लायी गयी तथा जिसने भावी शिक्षा नीति पर संपूर्ण बहस को विराम दे दिया।

मैकाले शिक्षा पद्धति का बल निम्नलिखित बातों पर रहा था-

- भारतीयों को अंग्रेजी भाषा में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा दिया जाना।
- चूँकि इस प्रकार की शिक्षा भारतीयों के एक बड़े समूह को प्रदान करने का अर्थ था बड़ी मात्रा में संसाधन का व्यय, जबकि एक औपनिवेशिक सरकार सामाजिक क्षेत्र में इतना ध न व्यय करने के पक्ष में नहीं थी। अत: एक वैकल्पिक तरीका अपनाया गया जिसे विप्रवेशन के सिद्धांत (Downward Infiltration Theory) का नाम दिया जाता है। इसके तहत पहले मुट्ठी भर भारतीयों को अंग्रेजी भाषा में पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा दी जानी थी, फिर वे भारतीय देशी भाषाओं में यह शिक्षा जन-सामान्य तक पहुँचाते।

वस्तुत: यह संपूर्ण योजना ब्रिटिश औपनिवेशिक हित में लाई गई थी, इसलिए यह भारत के पक्ष में लाभकारी कम, हानिकारक अधिक सिद्ध हुई। यह बात लगभग स्थापित हो चुकी है कि मैकाले शिक्षा पद्धति का वास्तविक उद्देश्य ब्रिटिश बाजार एवं ईसाई धर्म को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ सस्ती दर पर निम्न अधिकारियों के पद पर भारतीयों की नियुक्ति को सुनिश्चित करना था, किंतु दूसरी तरफ ब्रिटिश उदारवादी चिंतक भारत के आधुनिकीकरण जैसे उद्देश्य का प्रचार करते रहे।

आगे जब लॉर्ड हार्डिंग ने सरकारी सेवा में अंग्रेजी शिक्षा को अनिवार्य बना दिया, तो भारतीय भाषा एवं शिक्षा पद्धति सदा के लिए पिछड़ गई। अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को लागू करने के पश्चात् जिस आधुनिकता का दावा किया गया था, वह तो महज छद्म आधुनिकता (Pseudo-modernisation) सिद्ध हुई। शीघ्र ही इसके निम्नलिखित दोष प्रकट हुए-

- जनसामान्य तक शिक्षा नहीं पहुँच पाई। इस प्रकार का दावा कि मुट्ठी भर बुद्धिजीवी जनसामान्य तक शिक्षा पहुँचा देंगे, सर्वथा गलत सिद्ध हुआ। आगे टॉमेशनियन शिक्षा पद्धति (1853)

तथा वुड्स डिस्पैच (1854) में वर्नाक्यूलर भाषा (देशी भाषा) में शिक्षा की बात भी उठाई गई थी, परन्तु इसका सफल रूप में क्रियान्वयन नहीं हुआ। इसका परिणाम था भारत में लोक शिक्षा पद्धति का ध्वस्त होना। इससे भारत आज तक उबर नहीं सका है। 1830 के दशक में एडम रिपोर्ट से भी इस बात की पुष्टि होती है कि केवल बंगाल एवं बिहार में लगभग एक लाख छोटी-छोटी पाठशालाएं चलाए जा रही थीं, किंतु आगे ब्रिटिश नीति के कारण ये ध्वस्त हो गए।

- उसी प्रकार, जो शिक्षा भारतीयों को प्रदान की जाती रही थी, वह कहाँ तक भारतीयों की जरूरत के अनुकूल थी, वह भी अपने आप में विवाद का विषय है। अंग्रेजी शिक्षा ने न तो हमारे यहाँ विज्ञान को प्रोत्साहन दिया और न ही मौलिक सोच को। सबसे बढ़कर इसके कारण हमारे यहाँ देशी भाषाओं के विकास को गहरा धक्का लगा। वर्तमान में हम 'इंडिया' एवं 'भारत' के बीच का जो विभाजन पाते हैं, वह अंग्रेजी शिक्षा की ही देन है।

राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया-

ब्रिटिश शिक्षा के प्रति पृथक-पृथक काल में तथा अलग-अलग भारतीय राष्ट्रवादी-बुद्धिजीवियों के द्वारा अलग-अलग प्रतिक्रिया दिखायी गयी। राजा राममोहन राय अंग्रेजी शिक्षा के समर्थक रहे थे तथा उसी के माध्यम से वे भारत के उत्थान का रास्ता ढूंढ़ रहे थे, किंतु वह बहुत आरंभ की बात थी। उनके काल तक अंग्रेजी शिक्षा का दोष प्रकट नहीं हुआ था। वहीं गाँधी जी की सोच अलग थी, उनका मानना था कि अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों को दास बना लिया है। इसने लोगों में हीनता बोध पैदा किया है तथा देशी भाषाओं के विकास को अवरुद्ध किया है। अंग्रेजी शिक्षा में अनुभव की जगह सैद्धांतिक ज्ञान पर बल दिया गया है, बदले में उन्होंने ज्ञान एवं शारीरिक श्रम के बीच संतुलन पर आधारित शिक्षा का एक मॉडल प्रस्तुत किया। यह मॉडल आगे वर्धा शिक्षा योजना के रूप में सामने आया। वहीं दूसरी तरफ रवीन्द्रनाथ टैगोर पश्चिमी मॉडल एवं भारतीय मॉडल के बीच एक उचित संतुलन स्थापित कर शिक्षा का एक वैकल्पिक मॉडल लाना चाहते थे। इसका ज्वलंत उदाहरण उनका 'शांति निकेतन' था।

कुछ भारतीय राष्ट्रवादी ऐसे भी थे जो वर्तमान शिक्षा पद्धति में सुधार चाहते थे। उदाहरण के लिए, बड़ौदा जैसी प्रगतिशील देशी रियासत के द्वारा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा लागू किए जाने के बाद गोपाल कृष्ण गोखले जैसे राष्ट्रवादी नेता विधानमंडल में ब्रिटिश सरकार पर इस बात के लिए दबाव बनाते रहे कि अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा पद्धति ब्रिटिश भारत में भी लागू होनी चाहिए। यद्यपि ब्रिटिश सरकार द्वारा 1913 में शिक्षा नीति पर लाए गए सरकारी प्रस्ताव में निरक्षरता समाप्त करने की नीति को स्वीकार किया गया, परंतु फिर भी अनिवार्य शिक्षा सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया गया। अंत में, आगे 1944 की सार्जेन्ट योजना में पहली बार 6 से 11 वर्ष के बच्चों के लिए व्यापक, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा दिये जाने की योजना लायी गयी।

उपर्युक्त तथ्य यह दर्शाते हैं कि शिक्षा के मोर्चे पर ब्रिटिश सरकार की पहल भारतीय हित में नहीं थी। यही वजह है कि आजादी के समय भारत की साक्षरता दर मात्र 16% थी तथा महिलाओं में यह महज 8% रही थी। दुर्भाग्यवश, स्वतंत्र भारत की सरकार ने बम्बई प्लान (1944) के निर्देशन के बावजूद प्राथमिक शिक्षा को अधिक महत्व न देकर उच्च शिक्षण संस्थानों की स्थापना पर विशेष बल दिया था, इसलिए आज भी हम शत-प्रतिशत साक्षरता के स्तर पर नहीं पहुँच सके हैं।

KHAN SIR